शब्द–ब्रह्म
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
E ISSN 2320 – 0871
17 फरवरी 2025
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

डॉ. रांगेय राघव के जीवनीपरक उपन्यासों का उद्देश्यपरक परिदृश्य

डॉ. सुरेन्द्र कुमार
सहायक प्रोफ़ेसर (हिन्दी)
राजकीय महाविद्यालय
भिवानी, हरियाणा, भारत

शोध संक्षेप

साहित्यिक रचनाएँ उद्देश्यहीन नहीं होतीं, प्रत्येक लेखक अपनी कृतियों के माध्यम से समाज और व्यक्ति का यथार्थ प्रस्तुत करता है। डॉ. रांगेय राघव के जीवनीपरक उपन्यासों में ऐतिहासिक पुनर्मूल्यांकन द्वारा सामाजिक मूल्यों की व्याख्या की गई है। उन्होंने इतिहास को केवल तथ्यात्मक रूप में नहीं, बल्कि उसकी सामाजिक प्रासंगिकता को ध्यान में रखते हुए देखा। उनके अनुसार, भारतीय इतिहास को सही रूप में समझने के लिए सभी दृष्टिकोणों को समाविष्ट करना आवश्यक है। रांगेय राघव ने अपने उपन्यासों में समाज के नैतिक पतन, संकीर्णता, साम्प्रदायिक विद्वेष, नारी शोषण, अंधविश्वासों और अत्याचारों की आलोचना की है। उन्होंने सामाजिक मूल्यों को पुनर्परिभाषित करने और प्रगतिशील विचारधारा को स्थापित करने का प्रयास किया। उनके उपन्यासों में आदर्श और यथार्थ के मध्य एक संतुलन देखने को मिलता है जिससे वे यथार्थवाद की स्थापना करते हैं। उनकी रचनाएँ सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता को रेखांकित करती हैं और संघर्ष के माध्यम से इसे प्राप्त करने की प्रेरणा देती हैं। चाहे 'देवकी का बेटा' का कृष्ण हो या 'आँधी की नींवें' का महाराणा प्रताप, सभी पात्र सामाजिक चेतना और परिवर्तन के वाहक के रूप में उभरते हैं। डॉ. राघव का साहित्य अतीत से सीख लेकर भविष्य को नई दिशा देने का प्रयास करता है, जिसमें मानवता, सामाजिक समरसता, और न्याय की भावना को प्राथमिकता दी गई है।

मूल शब्द : *जीवनीपरक उपन्यास, ऐतिहासिक पुनर्मूल्यांकन, सामाजिक मूल्य, यथार्थ और आदर्श, साम्प्रदायिक सद्भाव, नारी शोषण, अंधविश्वास, सामाजिक परिवर्तन, प्रगतिशील विचारधारा, संघर्ष और चेतना, मानवतावाद, समाजवादी दृष्टिकोण।*

प्रस्तावना

कोई भी साहित्यिक रचना निरुद्देश्य नहीं होती। प्रत्येक रचनाधर्मी कलाकार का उसकी सर्जना के पीछे कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। डॉ. रांगेय राघव हिन्दी साहित्य के न केवल मूर्धन्य एवं प्रकाण्ड पण्डित हैं वरन् एक विशिष्ट जीवनधारा से भी ओत-प्रोत हैं। यही कारण है कि उनके जीवनीपरक उपन्यासों में व्यक्ति एवं समाज का यथार्थ, निर्मल और निष्पाप रूप अभिव्यक्त हुआ है। यह यथार्थ एक ओर व्यक्ति सन्दर्भों में ध्वनित हुआ है और दूसरी ओर सामाजिक सन्दर्भों में भी व्यक्त हुआ है। अतः उपन्यासों में युगीन परिवेश के चित्रण को ही हम उद्देश्य मानकर सन्तोष नहीं कर सकते और न ही औपन्यासिक तत्वों की दृष्टि से उनकी सफलता को देखकर हर्षातिरेक से पुलकित हो सकते हैं, क्योंकि "उपन्यास के भिन्न-भिन्न तत्वों का अलग-अलग और मिलकर भी किया हुआ सूक्ष्म चित्रण और सफलतापूर्वक निर्वाह ही उपन्यास को बड़ा नहीं बना देता, बड़ा बनाती है उद्देश्य की महत्ता और उसकी सफल सिद्धि।"**1** डॉ. रांगेय राघव का जीवनीपरक उपन्यास लेखन

में किसी विचारधारा, दर्शन और सिद्धान्त विशेष को प्रतिपादित करना अभीष्ट नहीं रहा है, क्योंकि "कुछ विशेष सिद्धान्तों अथवा विचारों के प्रतिपादन के उद्देश्य से तो बहुत ही कम उपन्यास लिखे जाते हैं पर सभी उपन्यासों में कुछ न कुछ विशेष विचार अथवा सिद्धान्त आपसे आप आ जाते हैं।"**2** फिर भी डॉ. रांगेय राघव ने कुछ जीवनीपरक उपन्यासों की भूमिका में इनकी रचना के पीछे अपने उद्देश्य का प्रत्यक्ष रूप से संकेत दिया है और कहीं अप्रत्यक्ष रूप से उपन्यास रचना का उद्देश्यपरक परिदृश्य पाठक वर्ग को स्पष्ट दिखाई देता है। अतः इसी उद्देश्यपरक परिदृश्य का विवेचन-विश्लेषण विभिन्न बिन्दुओं के आधार पर करना समीचीन होगा।

इतिहास के पुनर्मूल्यांकन से सामाजिक मूल्यों को व्याख्यायित करने की चेष्टा

डॉ. रांगेय राघव ने जीवनीपरक उपन्यासों के कथानक निर्माण के लिए इतिहास के जिन काल खण्डों का चयन किया है, उनकी युगों युगों से उपादेयता बरकरार रही है। अतीत में भी समाज को नई जीवन दृष्टि देने की सामर्थ्य मौजूद है। उपन्यासकार का एक श्लाघनीय प्रयास यह भी रहा है कि उन्होंने इतिहास को केवल इतिहास लेखन की दृष्टि से नहीं देखा, अपितु वर्तमान समाज के लिए उसकी प्रासंगिकता कहाँ तक सार्थक रह पाई है, यह भी देखने का प्रयास किया है। इसके लिए कथाकार ने रचनाधर्मी दायित्व को सदैव अपने समक्ष रखते हुए तटस्थता और निरपेक्षता का परिचय दिया है। इतिहास का पुनर्मूल्यांकन करने के पीछे रांगेय राघव की यही मान्यता रही है कि "मैंने अपना ऐतिहासिक दृष्टिकोण रखा है। प्राचीन भारत में साम्प्रदायिक आँखों ने जानबूझकर एक दूसरे के बारे में नहीं देखा। इसीलिए भारतीय इतिहास को जानने के लिए हर सम्प्रदाय को देखना आवश्यक है।"**3** अभी तक इतिहासकारों ने सत्य और तथ्य को झुठलाने का दुस्साहस किया है इसलिए वे कल्पित इतिहास से बंधकर चलने वाले नहीं थे। क्योंकि "उन इतिहासों में अकबर की उदारता का वर्णन मिल सकता है, किन्तु नवरोज मेले के पीछे छिपी घृणित भावना नहीं। अकबर की वीरता, विजयों का वर्णन और धार्मिक उदारता के प्रति दीने-इलाही का वर्णन मिल सकता है, किन्तु प्रताप के अद्भुत शौर्य, साहस और त्याग का नहीं। वहाँ यह मिल सकता है कि मानसिंह सदृश क्षत्रिय राजा अपनी बहन का विवाह राजपूतों का समस्त गौरव भूलकर अकबर से कर देने में गौरव का अनुभव करते थे, किन्तु इसका उल्लेख नहीं मिल सकता कि पद्मिनी की परम्परा में कितनी राजपूत कन्याएँ विधर्मी कामलोलुप इन मुसलमान बादशाहों की बेगमें बनकर अपार वैभव विलास भोगने से कहीं अच्छा अपने प्राणों का उत्सर्ग समझती थी।"**4** इसलिए डॉ. रांगेय राघव ने प्राप्त तथ्यों के आधार पर तत्कालीन भावना और चेतना के प्रकाश में काल्पनिक और अनुमानित सत्य का सृजन किया और इस प्रकार उनकी अन्तर्भेदी दृष्टि अतीत के धूमिल साम्राज्य में छिपे सत्य को देख सकने में सफल रही। उन्होंने अकबर महान् को विदेशी संस्कृति का प्रसारक और महान् साम्राज्यवादी चित्रित करते हुए 'आँधी की नीवें' उपन्यास की भूमिका में लिखा है कि "प्रस्तुत उपन्यास प्रभात काल के इस नए चित्र को उपस्थित करता है और प्रताप का नया मूल्यांकन करता है। राजपूत इतिहास पर यह इस ढंग की पहली ही रचना है।"**5**

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 फरवरी 2025
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

उपन्यासकार ने इन उपन्यासों में मानवतावाद के प्रति समाज के हो रहे मोह भंग को थामने का प्रयास किया है। समाज अनैतिक कर्मों की ओर अग्रसर दिखाई देता है, लेकिन प्रत्येक उपन्यास में एक युग पुरोधा को खड़ा करके समाज के नैतिक मूल्यों में हो रही गिरावट, पतन और क्षय को विराम दे दिया है। फलस्वरूप समाज ने अपनी अस्मिता और अपने मूल्यों को पहचाना है और उसमें एक आत्मबोध की भावना पैदा हुई है तथा संकीर्णता और हीन भावना से ग्रसित समाज ने सभी सड़ी-गली मान्यताओं से निजात पाने का सात्विक प्रयास किया है।

साम्प्रदायिक विद्वेष, सामाजिक अस्पृश्यता, नारी शोषण, अंधविश्वासों की भरमार, नारी के प्रति दूषित दृष्टिकोण, अत्याचार और अनाचार को सहन करने की नियति, राजनीतिक उठापटक, स्वार्थ की प्रबल भावना और ह्रासोन्मुखी समाज-व्यवस्था को देखकर रांगेय राघव विचलित तो नहीं परन्तु दुःखी और आत्मपीड़ित दिखाई देते हैं। सामाजिक मूल्यों की ऐसी क्षति अतीत में ही नहीं वर्तमान में भी जारी है और निकट भविष्य में इनका कोई हल दिखाई नहीं देता, लेकिन इस शाश्वत सत्य के बावजूद रांगेय राघव ने अपने आशावादी स्वर और आस्था को पतित नहीं होने दिया और उन्होंने सामाजिक मूल्यों को पुनर्व्याख्यायित करने की सफल चेष्टा की। फलतः जीवनीपरक उपन्यासों में साम्प्रदायिक सद्भाव, सामाजिक समरसता, आधुनिक युगानुकूल दृष्टिकोण, नारी की अधिकार चेतना, अत्याचार और अनाचार के प्रति दुर्धर्ष संघर्ष, रामराज्य की कल्पना, 'परहित सरिस धर्म नहीं भाई' की भावना और विकासोन्मुखी समाज व्यवस्था को अपनी प्रगतिवादी विचारधारा से अभिषिक्त किया। उन्होंने अपने इसी उद्देश्य को 'देवकी का बेटा' उपन्यास की भूमिका में इस प्रकार अभिव्यक्त किया है- "आशा है पाठकों को इस जीवनी के पढ़ने से एक नया दृष्टिकोण अवश्य मिलेगा, जिससे अतीत का मूल्यांकन करने को एक नई अनुरक्ति पैदा होगी, जिसमें श्रद्धा के स्थान पर सामाजिक और मानवीय रूपों का भी विश्लेषण हो सकेगा।"**6**

स्पष्ट है कि डॉ. रांगेय राघव पुरातन सामाजिक मूल्यों के प्रति अंध भक्ति और श्रद्धा का समर्थन नहीं करते तो नवीन मूल्यों के प्रति अतिशय मोह भी नहीं रखते। वे किसी भी सामाजिक मूल्य को अपनाने से पहले उसकी मानव मात्र के लिए उपयोगिता को जाँच-परख लेना चाहते हैं। इसलिए उन्होंने इन उपन्यासों में अपनी पैनी-पारखी नज़र को 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय की भावना से ओझल नहीं होने दिया है।

यथार्थ और आदर्श यथास्थिति के मध्य लेखकीय तनाव

डॉ. रांगेय राघव एक समाजवादी लेखक हैं, इसलिए उनकी विचारधारा की स्पष्ट छाप उनके जीवनीपरक उपन्यासों पर भी परिलक्षित होती है। इन उपन्यासों के अध्ययनोपरांत प्रतीत होता है कि वे मात्र शुष्क आदर्श को अपना न सके और यथार्थ का दामन छोड़ नहीं सके। यही कारण है कि लेखक अपने आपको इसी उधेड़बुन, उहापोह, अधर झूल और वैचारिक द्वन्द्वों के भंवर में फँसा हुआ पाते हैं। आदर्श और यथार्थ एक नदी के ऐसे दो किनारे हैं जो कभी मिल नहीं सकते। संभवतः इसीलिए उन्होंने मध्यम मार्ग अर्थात् आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद को अभीष्ट प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण सेतु मानकर अपने जीवनीपरक उपन्यासों की रचना की है। उन्होंने लिखा है कि "मैंने जीवन के यथार्थ को देखा है, इसलिए नहीं

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 फरवरी 2025
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

कि मेरी किसी आदर्श में आस्था नहीं है, मेरी आस्था मानव में है, उसके साथ शाश्वत कल्याण धर्म में है।"**7** रांगेय राघव इस तथ्य से भलीभाँति परिचित थे कि कोरे आदर्श अथवा यथार्थ को अपनाकर वे अपनी मानवतावादी आस्था को पुष्ट नहीं कर पाएंगे और एक शाश्वत मानव धर्म की प्रतिष्ठापना करने का उनका उद्देश्य विस्मृत होते देर नहीं लगेगी। इसलिए उन्होंने इस सामयिक सत्य को पहचाना और प्रत्येक उपन्यास में तद्युगीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का चित्रण करते समय एक ओर यथार्थ वातावरण की सृष्टि की, जिसमें फूल भी हैं, शूल भी, सामाजिक विसंगतियों की भरमार भी है, तो सांस्कृतिक जीवन मूल्यों की अमूल्य धरोहर भी, आधुनिकता की भीनी-भीनी गंध है तो आँख और नाक बंद करके भाग निकलने की विवशतामयी दुर्गंध भी तथा दूसरी ओर लेखक का भविष्य के प्रति मानवतावादी आस्था का स्वर भी इन उपन्यासों की चरम उपलब्धि है। रांगेय राघव की धारणा है कि "भारत के भविष्य में सम्भवतः संसार की पथ दिखाने वाली ज्योति उदय होगी, जो रूस-चीन के अनुभवों की अच्छाइयाँ लेगी, अपनी परम्परा के मानवतावाद को लेगी और लेगी योग में निहित मानव जाति की अपार शक्ति को और नए समाज, संसार और व्यक्ति का उदय होगा, जिसमें समाज के विकास के साथ व्यक्ति घुटेगा नहीं, विकास करेगा।"**8**

इस प्रकार इन जीवनीपरक उपन्यासों में उपन्यासकार ने आदर्श और यथार्थ का संगम कर दिया है, क्योंकि दोनों का उद्भव पृथक-पृथक मनोवृत्तियों को लेकर हुआ किन्तु दोनों को एक दूसरे से सम्बद्ध किए बिना समझा नहीं जा सकता था। "एक के बिना दूसरा अस्तित्वहीन था, अतः दोनों मिलकर एक-दूसरे को पुष्ट करने में सफल रहे हैं। वास्तव में यथार्थ और आदर्श का समन्वय नितान्त आवश्यक है। एक दूसरे के अभाव में यदि एक विकलांग एवं हास्यास्पद लगने लगेगा तो दूसरा समाज के लिए भयंकर एवं हानिप्रद होकर रह जाएगा।"**9**

डॉ. रांगेय राघव समाज, संस्कृति और सभ्यता की त्रिवेणी को दूषित होते हुए देखकर अनिष्ट की आशंका से ग्रस्त हो जाते हैं। उनका यह यथार्थ चित्रण मानसिक आघात तो पहुँचाता ही है लेकिन शीघ्र ही वे अपने आपको मानसिक तसल्ली भी दे लेते हैं। यह हल उन्हें आदर्श में मिलता है और आदर्श उपजता है उनकी धार्मिक आस्था से, क्योंकि धार्मिक आस्था और आदर्श का चोली-दामन का साथ है। दोनों एक दूसरे की काया और छाया के समान हैं। संकट की घड़ी में दोनों ही सम्बल प्रदान करते हैं। इसी यथार्थ और आदर्श की लेखकीय ऊहापोह का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

"मेरे माधव ! मेरा भारत कभी लुप्त तो नहीं हो जाएगा। इस भारत भूमि की सन्तान कभी इतनी जघन्य तो नहीं हो जाएगी कि अपनी आत्मा में से विश्वास ही खो बैठे ! नहीं, मुझे ऐसा नहीं लगता। आधार वे ही खो देते हैं जो केवल एक मात्र अंधविश्वास में पला करते हैं। जिनके मन में एक व्यापक सत्ता को ग्रहण करने की शक्ति, हर युग बंधन में भी मौजूद रहती है, वे कभी एकदम नष्ट नहीं हुआ करते, वे तो अपना विकास किया करते हैं। एक आँधी आती है चली जाती है, आँधियां पत्थर लुढ़का सकती हैं, पर्वतों को नहीं हिला सकती, चाहे उनमें कितनी भी प्रचण्ड शक्ति क्यों न हो।"**10**

इससे स्पष्ट होता है कि उपन्यासकार के मानस-भवन में आदर्श और यथार्थ को लेकर एक तनाव

अवश्य रहा है लेकिन उसका निराकरण भी उन्होंने स्वयं ही कर लिया है। अतः कह सकते हैं कि उनके जीवनीपरक उपन्यासों का एक प्रमुख उद्देश्य आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद को अभिव्यक्ति प्रदान करना भी रहा है और इसमें उन्हें पूर्ण सफलता भी मिली है।

नवीन सामाजिक चेतना और जीवन-संघर्ष के प्रति आस्था

रांगेय राघव के जीवनीपरक उपन्यासों में सामाजिक परिवेश और जनजीवन को व्यापक पृष्ठभूमि पर चित्रित किया गया है। "रांगेय राघव के उपन्यासों में उनके समय के समाज और उसकी समस्याओं की प्रामाणिक छवि दिखाई पड़ती है। समस्याओं को उनके समूचे आयामों के साथ सोच और विचार का विषय बनाने के लिए और उसके माध्यम से कुछ अहम् नतीजों पर पहुँचने के लिए हमें रांगेय राघव के उपन्यासों जैसा मॉडल कम ही मिलेगा।"**11** जीवनीपरक उपन्यास क्योंकि ऐतिहासिक चरित्रों से बंधे हुए हैं, इसलिए इनमें उपन्यासकार ने मानव के वास्तविक जीवन की धारा और समाज के अनुभवों को संचित किया है। इनके माध्यम से इन्होंने अतीत और वर्तमान के काल प्रवाह को जोड़ दिया है और भविष्य की राह को सुगम और सुखद बनाने का प्रयास किया गया है। इनमें वर्तमान समाज की त्रुटियों और खूबियों के आधार पर नवीन सामाजिक चेतना को जाग्रति प्रदान की है।

डॉ. रांगेय राघव ने अपने जीवनीपरक उपन्यासों में व्यक्ति विशेष के दृष्टिकोणों के साथ-साथ जनसाधारण के संघर्षों, उनके राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विकास, आदर्शों और विश्वासों, लोक परम्पराओं एवं प्रगति, विरोधों और साम्यों आदि को भी प्रस्तुत किया है। विभिन्न प्रसंगों के माध्यम से युगीन समस्याओं को उठाकर जीवन-संघर्ष के अन्तर्गत उनका निदान किया है क्योंकि इसके अभाव में न तो नवीन सामाजिक चेतना का उद्भव हो सकता था और न ही जीवन-संघर्ष के प्रति आस्था उत्पन्न हो सकती थी। इन उपन्यासों के माध्यम से लेखक ने यह जताने का सार्थक प्रयास किया है कि "कोई भी सामाजिक समस्या समाज-जीवन के आन्तरिक विकार का परिणाम होती है। जिस समाज में आर्थिक विषमता और उससे उत्पन्न धार्मिक और नैतिक मूल्यों का सम्भ्रम हो, उसमें समस्याएँ ही समस्याएँ मनुष्य के विकास में बाधा पहुँचाती हैं।'12 इसलिए डॉ. रांगेय राघव ने सभी उपन्यासों में सामाजिक स्तर पर नारी जीवन, समाज में व्यक्ति और समाज के परस्पर सम्बन्धों और सांस्कृतिक मूल्यों की समस्याओं को उठाया है ताकि हम इन समस्याओं के मूल कारणों से परिचित हो सकें और भविष्य में इन से बच सकें।

'देवकी का बेटा' का कृष्ण हो या 'लोई का ताना' का कबीर, 'रत्ना की बात' का तुलसी हो या 'धूनी का धुआँ' का गोरखनाथ, 'जब आवेगी काल घटा' का चर्पटनाथ हो या 'आँधी की नींवें' का महाराणा प्रताप या किसी अन्य जीवनीपरक उपन्यास का कोई और नायक, सभी का जीवन संघर्षमय रहा। इस संघर्ष ने ही उनके जीवन की सार्थकता सिद्ध की है। ये सभी व्यक्ति परिवर्तन के आकांक्षी थे क्योंकि परिवर्तन इनके जीवन की एक लय और तान थी। जीवन को जड़ता प्रदान करना इनके सिद्धान्तों के विरुद्ध था। इनका जमीर युग का वाहक था। अतः समाज में नई सामाजिक चेतना का उन्नयन करने के लिए सभी ने संघर्ष का रास्ता अख्तियार किया। दुःशासन और दुष्ट का

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 फरवरी 2025
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

दमन करने के लिए साम-दाम-दण्ड भेद की नीति भी अपनाई। महारानी राणा हम्मीर से कहती है- "दुष्टों को सज्जनता से ही दबाया होता तो श्रीकृष्ण ने शिशुपाल को क्यों मारा था। मेरे पिता भीष्म और द्रोण की भाँति अधर्मी के साथ हैं, उन्हें छल से ही हटाना होगा।"**13** डॉ. रांगेय राघव इसी युग चेतना को उत्पन्न करना चाहते थे। इस उद्देश्य-प्राप्ति के लिए उन्होंने युगनायकों से जुड़े हुए चमत्कारों के आवरण को हटाकर उन्हें जनसामान्य के रूप में खड़ा किया। यही कारण था कि 'देवकी का बेटा' में कृष्ण इन्द्र के प्रकोप से जूझते हुए भी "जीत गए और इन्द्र का अहंकार धूल में मिल गया, फिर पवित्र ब्रज वसुंधरा विजयिनी-सी निकल आई।"**14** इस प्रकार उपन्यासकार ने प्रत्येक समस्या का समाधान संघर्ष में खोजा है। फलतः जीवन-संघर्ष के प्रति पाठक की आस्था भी दृढ़ से दृढ़तर होती गई और नई सामाजिक चेतना का उदय हुआ।

सामाजिक परिवर्तन की महत्वपूर्ण भूमिका का उद्घाटन

इन उपन्यासों में कथानायकों को विभिन्न स्थानों पर नाना प्रकार की समस्याओं और दुविधाओं का सामना करना पड़ा है लेकिन कहीं पर भी उनके जीवन की विवशता, निरुपाय एवं बेबसी इनका कथ्य बनकर नहीं आई है। जीवनीपरक उपन्यासों का व्यक्ति कहीं भी हारा हुआ नहीं है अपितु अपनी तीव्र जिजीविषा के बल पर चुनौतियों को हिम्मत और बहादुरी से स्वीकार करता हुआ व्यवस्था से लड़ता है। "विसंगतियों के प्रति रांगेय राघव का तेवर आक्रामक रहा है। उनके व्यंग्य की धार मारक और व्यवस्था को दूर तक छीलने वाली रही है।"**15** समाज की विसंगतियों का भार नियति मानकर ढोना उन्हें कभी स्वीकार्य नहीं रहा और परिवर्तन की तीव्र लालसा कभी क्षीण नहीं पड़ी। परिणाम स्वरूप सामाजिक परिवर्तन और शोषण से मुक्ति के लिए उपन्यासों के सभी प्रमुख पात्रों में सर्वस्व त्याग और समर्पण की भावना की दीपशिखा प्रज्वलित रही। 'देवकी का बेटा' कृष्ण कहता है' "आर्य देवकी और आर्य वसुदेव, गणाधिपति उग्रसेन मथुरा के कारागृह में बन्द हैं। उनको मुक्त करने के लिए मैं जा रहा हूँ। मैं वहाँ जाकर प्राण दे दूंगा परन्तु हारकर लौटूंगा नहीं।"**16** ऐसा ही विचार साम्य 'धूनी का धुआँ' में गोरखनाथ रखते हैं- "धर्म के लिए सब कुछ करना होगा। आज या तो गोरख अपने गुरू को लेकर लौटेगा या नहीं लौटेगा।"**17**

इसमें कोई दो राय नहीं है कि ये सभी युग द्रष्टा और स्रष्टा भोग की कामना लेकर नहीं अपितु त्याग की अभिलाषा लेकर सामाजिक परिवर्तन की पताका फहराने में सफल हुए थे। जीना और मरना इनके लिए एक समान था। इसलिए 'लोई का ताना' का कबीर निर्भीक स्वर में रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह का आह्वान करता है। मानवीय धर्म को मानने वाला कबीर इंसान को इंसान के रूप में ही देखना चाहता है, क्योंकि धर्म की आड़ में अक्सर मानवता का गला घोंट दिया जाता था। ऐसी दशा में समाज का उत्थान नहीं, पतन ही हो सकता है। स्पष्ट है कि धर्म के मुट्ठीभर ठेकेदारों ने उसके व्यापक और उदार धरातल को संकीर्णता और कट्टरता की चारदिवारी में कैद करके हेय बना दिया है। फिर भी कबीर यही कहता है कि "मैं किसी से नफरत नहीं करता। हिन्दुओं में वर्णाश्रम व्यवस्था ने इंसान को इंसान से बाँट दिया है। उनके अवतारों की कथाओं ने जनता को रूढ़ियों में फांस लिया है। मूर्ति पूजा के नाम पर मंदिरों में लूट मची हुई है। जैनी और बौद्ध ईश्वर को नहीं मानते, पर उनके

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 फरवरी 2025
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

आचरण किसी भी तरह हिन्दुओं से कम रूढ़िवादी नहीं हैं। जोगी संसार में रहकर भी दूसरों की कमाई पर पलते हैं। एक दिन मैं भी उनके रहस्य की बातों से हठयोग से प्रभावित हुआ था पर वह सहज नहीं था, इसका अन्त पाखण्ड ही है। मैं इन सब को नहीं मानता। लोग कहते हैं जम्बूद्वीप का धर्म सनातन है, वेद भगवान का बनाया है, मैं इसे भी नहीं मानता। वे सब कहते हैं कि मैं नीच हूँ और मुसलमानों का दोस्त हूँ और तुम मुझे मुसलमानों का दुश्मन समझते हो। तो सुनो ! मैं तुम्हारी तेग से डरता नहीं।"**18**

इन जीवनीपरक उपन्यासों के सभी कथानायक अपने आपको जनसाधारण से दूर नहीं होने देते क्योंकि उनका क्षणिक पथ-विचलन भी उनके नायकत्व पर प्रश्न चिह्न लगा देता। वे यह भी जानते थे कि समाज को परिवर्तन की ओर मोड़ना जन-सहयोग के बिना सम्भव नहीं है। इस प्रकार डॉ. रांगेय राघव के जीवनीपरक उपन्यासों में अनवरत कर्म करने की प्रेरणा है। ये सभी उपन्यास कर्म के विशिष्ट धरातल पर हैं जहाँ जय-पराजय, रोग-शोक, हानि-लाभ, यश-अपयश आदि सभी में समान रूप से भोक्ता रहकर कर्म करना और आगे बढ़ते रहना, यही भाव सन्निहित है। जीवनीपरक उपन्यासों की यह प्रेरणा प्रमुख पात्रों के माध्यम से सामने उभरती है। वे अपनी नैतिकता, सत्यवादिता और साहसी मनोवृत्ति के कारण सामाजिक परिवर्तन करने का अदम्य साहस और उत्कट लालसा को जीवित रखते हैं। इस प्रकार डॉ. रांगेय राघव ने इनके माध्यम से सामाजिक परिवर्तन की महत्वपूर्ण भूमिका को उद्घाटित किया है।

आधुनिक यथार्थ और सांस्कृतिक अवदान

उपन्यासकार का जीवनीपरक उपन्यासों की रचना के पीछे एक महत्वपूर्ण उद्देश्य यह भी रहा है कि वे इनके माध्यम से भारतीय संस्कृति की विराटता का दिग्दर्शन करा सकें और उन महापुरुषों की सांस्कृतिक देन से अवगत करा सकें जो आजीवन उसके प्रति समर्पित रहे। समाज, धर्म, राजनीति आदि क्षेत्रों में उन्होंने जो आदर्श स्थापित किए, उनकी प्रासंगिकता को समय की धूल भी धूमिल नहीं कर सकी और वे वर्तमान में उतने ही सार्थक हैं। संकट की घड़ी और विपरीत परिस्थितियों में उन युग पुरुषों के आदर्श-संयम, सम्बल और साहस-प्रदान करते हैं तथा परोपकार के लिए मर-मिटने की एक प्रेरणा प्रदान करते हैं। इसके बावजूद उन्हें अपनी महानता का तनिक भी ज्ञान नहीं था कि कभी उनमें अहंकार का प्रादुर्भाव हुआ हो। 'देवकी का बेटा' में कृष्ण ने एकतंत्र और निरंकुशता के प्रति कंस का वध करके गणतंत्र की स्थापना की। कृष्ण का यह कहना कि "हम मर्यादा के लिए रक्त देने से नहीं डरते, हम शृंखलाओं को खण्ड-खण्ड पर जीवन की महिमा का सृजन करते हैं।"**19** इस बात का ठोस प्रमाण है कि वह अन्याय का प्रतिकार ही नहीं करते थे, अन्यायी से प्रतिशोध भी लेते थे। 'यशोधरा जीत गई' के महात्मा बुद्ध ने मानव मात्र के दुःख दूर करने के लिए अपने सभी सुख-वैभव त्याग दिए थे तो 'धूनी का धुआँ' के "गोरख ने वाममार्ग को रोककर स्त्री की मर्यादा बढ़ाई और समाज से व्यभिचार को हटाया। गोरख ने जाति प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाई और मनुष्य मात्र को जाति-विषय में समान माना, हिन्दू को भी यहाँ तक कि मुसलमान को भी।"**20** गोरख ने तो शासक वर्ग के लिए यह मर्यादा स्थापित की थी कि "समाज का नेता वास्तव में वह होना चाहिए जो योगी हो अर्थात् स्वार्थ से परे हो। अहंकार

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 फरवरी 2025
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

सत्ताधारण, बल की लिप्सा से जो व्यक्ति परे हो वही शासन करने के योग्य है।"**21**

इस प्रकार सभी जीवनीपरक उपन्यासों में लेखक ने सत्य और धर्म की जीत दिखलाई है तथा भारतीय संस्कृति की उदारता और दूसरे को अपने में आत्मसात् करने की भावना को प्रकट किया है। यहाँ व्यक्ति अधिकार पाने से पहले कर्त्तव्य का निर्वाह करना परम आवश्यक समझते थे और "देश के स्वार्थ को व्यक्ति के स्वार्थ के ऊपर रखने लगे थे।"**22**

प्रत्येक औपन्यासिक जीवनी की रचना के पीछे डॉ. रांगेय राघव के निजी विचार भी अपनी स्वायत्त सत्ता रखते हैं। फलस्वरूप उन्होंने इन उपन्यासों में जहाँ पतित को पतित और अपराधी को अपराधी चित्रित किया है, साथ ही यह भी दर्शाया है कि पतित को पतन के गर्त से बाहर कैसे निकाला जा सकता है ? उपन्यासकार ने कहीं पर भी अपनी ओर से व्यक्ति को वर्ग और वर्ण के पंक से कलंकित नहीं किया है क्योंकि वे जीवन की किसी न किसी वास्तविकता को लेकर ही चले हैं। अतः इनमें आधुनिक यथार्थ को अपनाते हुए शुद्ध वस्तुमूलक और वर्गहीन जनवादी चेतना से अनुप्राणित किया है। साथ ही में सम्पूर्ण मानव समुदाय को एकत्व के सूत्र में पिरोकर भ्रातृत्व भाव भी जाग्रत करना चाहा है।

डॉ. रांगेय राघव ने अपने जीवनीपरक उपन्यासों में जहाँ मनुष्य के देवत्व को प्रकट किया है, वहीं उसके विकृत पशुत्व को भी। उन्होंने इनमें किसी काल्पनिक आदर्श को न थोपकर मानव की सभी विसंगतियों, उसके क्रूरतम शोषण, ऊँच-नीच आदि को यथा तथ्य उजागर किया है और बुराई में भी अच्छाई खोजने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। इस प्रकार लेखक ने इन उपन्यासों के माध्यम से उस शाश्वत सत्य को उद्घाटित किया है कि अतीत में भारत सांस्कृतिक दृष्टि से सम्पन्न था और आधुनिक समाज की तरह वैमनस्यता और अलगाव के कारण एक सीमा से अधिक खण्डित नहीं हुआ था। उस समय के भारतीय समाज में जन-समुदाय को कोई राह दिखाने वाला युगपुरुष आगे बढ़कर आता था और अपने स्वार्थ से ज्यादा परमार्थ और परोपकार की भावना को प्रश्रय देता था। आज के इस आधुनिक और वैज्ञानिक चिन्तन से सम्पन्न समाज में बड़े से बड़ा नेता भी पहले स्वार्थ को तरजीह देता है। अतः उपन्यासकार ने इस विकृत और स्वार्थी मनोवृति के कटु सत्य का भारत की सांस्कृतिक परम्पराओं के परिप्रेक्ष्य में आकलन किया है।

परम्परा और आधुनिकता का विलय

भारतीय जनमानस प्राचीन परम्परा से ही इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तियों को चमत्कारों से आवृत्त करता रहा है। इससे उसके व्यक्ति चरित्र का मूल स्वरूप ही लुप्त हो गया है और उसकी मूल आत्मा चमत्कारों की चकाचौंध में भटककर अपनी अस्मिता की लड़ाई भी हार जाती है। "इन उपन्यासों में उपन्यासकार का मुख्य लक्ष्य परम्पराओं और किंवदंतियों के घटाटोप में खोए हुए महापुरुषों के यथार्थ जीवन को उद्घाटित करना है। जीवनियाँ लिखते समय इनकी दृष्टि ऐतिहासिक वातावरण और परिवेश पर से हटने नहीं पाई है। 'देवकी का बेटा' उपन्यास में भागवत के योगिराज कृष्ण एक मानव के रूप में असाधारण व्यक्तित्व लेकर आए हैं। देवता को मानवीय धरातल पर बैठाना ही उपन्यासकार को अभीष्ट समझ पड़ता है।"**23** डॉ. रांगेय राघव को किसी के व्यक्तित्व के साथ चमत्कार जोड़ने की भारतीय परम्परा से एक चिढ़ थी और इसका भी एक कारण था। इसका स्पष्टीकरण देते हुए वे 'देवकी का बेटा' की भूमिका में लिखते हैं कि

"मैंने कृष्ण चरित्र को चमत्कारों से अलग करके देखा।.... जो महानता कृष्ण के मनुष्य रूप में प्रकट होती है, वह वैसे नहीं मिलती, चमत्कारों में सत्य डूब जाता है।"**24** 'यशोधरा जीत गई' में वे लिखते हैं- "बुद्ध को मैंने चमत्कारों से अलग करके देखा है। चमत्कार व्यक्ति की महानता को गिराते हैं।"**25**

जाहिर है कि डॉ. रांगेय राघव ने इन युगनायकों को चित्रित करने से पूर्व उनके वास्तविक चारित्रिक स्वरूप को समझा है और तथ्यों की कसौटी पर कसा है तथा उनकी सामाजिक उपादेयता को मूल्यांकित किया है। इससे प्रतीत होता है कि उन्हें इन पात्रों के मिथकीय चरित्र पर पूर्ण आस्था नहीं थी। इसका कारण उपन्यासकार ने 'लोई का ताना' में कबीर के माध्यम से स्पष्ट किया है- "कबीर ने दूसरों के बल पर खाने वाले साधुओं का घोर विरोध किया था। वे तो मेहनत का खाना चाहते थे। साधारण जनता ने कबीर को समझा था।.... पर बाद में कबीर पंथियों ने कबीर को मिटा दिया। परवर्तियों ने कबीर को चमत्कारों से ढक दिया था।"**26**

इस प्रकार एक ओर व्यक्ति विशेष पर चमत्कारों की प्रवृत्ति के कारण भारतीय जन-समुदाय की अंधभक्ति ने उपन्यासकार को सोचने और यथार्थ को उद्घाटित करने को विवश किया है, उसी प्रकार दूसरी ओर एक अन्य परम्परा का भी उन्होंने भण्डाफोड़ किया है। अभी तक इतिहासकारों ने समन्वय और साम्प्रदायिक सद्भाव के नाम पर सत्य को उघाड़ने का कभी सार्थक प्रयास नहीं किया। इतिहासकारों के इस दृष्टिकोण को लेकर डॉ. रांगेय राघव खिन्न नज़र आते हैं। उनका कहना था कि "आज हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के नाम पर हमें पुराने इतिहास को गलत ढंग से प्रस्तुत नहीं करना चाहिए।"**27** अतः उपन्यासकार ने इन जीवनीपरक उपन्यासों के माध्यम से प्राचीन परम्परा को संशोधित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। "इन्होंने समन्वय के नाम पर मुसलमानों के बर्बर तथा विकृत रूप को छिपाया नहीं है और उनकी हीन भावना को उघाड़ कर रख दिया है। इन सभी उपन्यासों के मूल में उनकी राष्ट्रीय, सांस्कृतिक और मानवतावादी दृष्टि है।"**28**

इस प्रकार डॉ. रांगेय राघव ने महापुरुषों के प्रति चामत्कारिक प्रवृत्ति और इतिहासकारों की इतिहास के प्रति एकांगी दृष्टि दोनों परम्पराओं को युग के अनुकूल संशोधित किया है और इस उद्देश्य प्राप्ति में उपन्यासकार को सर्वांशतः सफलता मिली है। "इस प्रकार रांगेय राघव की हर रचना उनके जनवादी और मानवतावादी दृष्टि का प्रतिफलन है। इससे रांगेय राघव पर सौद्देश्यवादी लेखक का आरोप लगाया जा सकता है किन्तु बिना उद्देश्य के समाज के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया सदैव अधूरी रही है।"**29**

निष्कर्ष

सारांशतः कह सकते हैं कि उपन्यासकार का प्रमुख उद्देश्य महापुरुषों के मानवीय चरित्र को चित्रित करना रहा है। विशेषतः नारी पात्रों के चरित्र को निखारकर अत्यन्त गौरवशाली बना दिया है। इतिहास-संशोधन, यथार्थवादी दृष्टिकोण, परिवेश का समग्र चित्रण, सांस्कृतिक विशेषताओं का उद्घाटन, आधुनिक चिंतन तथा मानवीय पहलुओं का चित्रांकन करना डॉ. रांगेय राघव का प्रधान उद्देश्य रहा है और कहना न होगा कि लेखक अपने उद्देश्य में पूर्णतः सफल रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 साहित्य सहचर, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 85
2 साहित्यालोचन, डॉ. श्यामसुन्दर दास, पृष्ठ 215

3 रांगेय राघव की सम्पूर्ण औपन्यासिक जीवनियाँ यशोधरा जीत गई, (भूमिका) पृष्ठ 135
4 हिन्दी के स्वछन्दतावादी उपन्यास, डॉ. कु. कमल कुमारी जौहरी, पृष्ठ 495-496
5 रांगेय राघव की सम्पूर्ण औपन्यासिक जीवनियाँ आँधी की नींवें, (भूमिका) पृष्ठ 975
6 वही, देवकी का बेटा, (भूमिका) पृष्ठ 4
7 आखिरी आवाज, रांगेय राघव, पृष्ठ 3 (भूमिका)
8 रांगेय राघव की सम्पूर्ण औपन्यासिक जीवनियाँ, धूनी का धुआँ (भूमिका) पृष्ठ 368
9 हिन्दी उपन्यास साहित्य में आदर्शवाद, सर्वजीत राय, पृष्ठ 68
10 रांगेय राघव की सम्पूर्ण औपन्यासिक जीवनियाँ लखिमा की आँखें, पृष्ठ 723
11 स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में ग्रामीण यथार्थ और समाजवादी चेतना, सुरेन्द्र प्रताप यादव, पृष्ठ 153
12 हिन्दी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. चन्द्रकान्त महादेव बांदिवडेकर, पृष्ठ 148
13 रांगेय राघव की सम्पूर्ण औपन्यासिक जीवनियाँ जब आवेगी काल घटा, पृष्ठ 599
14 वही, देवकी का बेटा, पृष्ठ 94
15 साहित्य का सामाजिक यथार्थ, डॉ. गोविन्द रजनीश, पृष्ठ 120
16 रांगेय राघव की सम्पूर्ण औपन्यासिक जीवनियाँ देवकी का बेटा, पृष्ठ 101
17 वही, धूनी का धुआँ पृष्ठ 454
18 वही, लोई का ताना, पृष्ठ 843
19 वही, देवकी का बेटा, पृष्ठ 130
20 वही, धूनी का धुआँ पृष्ठ 471
21 वही, पृष्ठ 367
22 वही, आँधी की नींवें, (भूमिका) पृष्ठ 974
23 डॉ. रांगेय राघव और उनके उपन्यास, डॉ. लालसाहब सिंह पृष्ठ 353
24 रांगेय राघव की सम्पूर्ण औपन्यासिक जीवनियाँ देवकी का बेटा, (भूमिका) पृष्ठ 3
25 वही, यशोधरा जीत गई, (भूमिका) पृष्ठ 135
26 वही, लोई का ताना, (भूमिका) पृष्ठ 728
27 वही, आँधी की नींवें, (भूमिका) पृष्ठ 974
28 डॉ. रांगेय राघव और उनके उपन्यास, डॉ. लालसाहब सिंह पृष्ठ 353
29 साहित्य का सामाजिक यथार्थ, डॉ. गोविन्द रजनीश, पृष्ठ 119